भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-11, अंक-6-7 सोमवार, 25 जुलाई' 88	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी मानद सहसम्पादक: श्री महेन्द्र दवे	वार्षिक चन्दा-10.00 प्रति अंक : 1.00

मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानन्दस्वामी

एक बार मू.अ.मू. गुणातीतानन्दस्वामी गढ़डा से महाराज के साथ कारियाणी आये थे। यहाँ थोड़े दिन रुक कर महाराज हरिजयंती के उत्सव पर वड़ताल जाने वाले थे। परन्तु यहाँ देखा तो उन्नीस साधु बीमार थे, सो उन साधुओं की सेवा-सरभरा में किसी के रुकने की जरूरत थी। परन्तु सेवा में रुकने कोई भी तैयार हो तो न? क्योंकि सभी को महाराज के साथ उत्सव में जाने का लालच था। महाराज ने तो यहां तक कह दिया कि ''जो इन बीमार साधुओं की सेवा में यहां रुकेगा उसे मैं उत्सव में आने का फल यहीं दे दूँगा।'' पर किसी संत ने रुकने के लिये हां नहीं भरी। हां, एक गुणातीतानन्दस्वामी ने महाराज को कहा कि 'महाराज ! मैं यहां सेवा में रुकूंगा।'

सुनते ही महाराज अत्यंत राजी हुए और अपने दोनों हाथ स्वामिश्री के मस्तक पर रखकर बोले 'धन्य हो! तुमने मेरा वचन नीचे नहीं गिरने दिया।' और महाराज स्वामी को वहां छोड़कर उत्सव के लिए वड़ताल जाने पधारे।

कारियणी में स्वामी ने खड़े पांव सभी बीमार साधुओं की खूब महिमापूर्वक सेवा करी। उनकी भावपूर्ण सेवा से थोड़े ही दिनों में सभी संत अच्छे हो गये। उत्सव होने में अभी चार पांच दिन बाकी भी थे, तो सब संतों ने स्वामिश्री को वड़ताल जाने कहा। स्वामिश्री वड़ताल जाने निकले तो सब संतों ने कहा कि महाराज को हमारी ओर से भेंटना। स्वामिश्री कारियणी से वड़ताल पहुँच गये। महाराज स्वामिश्री को आये देखकर अत्यंत राजी हुए और उन्नीस बार सब साधुओं का नाम लेकर अपने गले लगाये !

अनुवत्ति समझ कर वचन अध्धर झेलने वाले पात्र पर महाराज की अन्तर की प्रसन्नता सहज ही फिसल गई !

स्वामिश्री की पराभक्ति का एक ऐसा ही दूसरा प्रसंग निहारें जिससे महाराज व स्वामी के अजोड़ एकत्व का सम्यक् दर्शन होता है।

एक बार महाराज अक्षर ओरडी में विराजमान थे। महाराज के पास सद्. मुक्तानंदस्वामी, सद्.

गोपालानंदस्वामी, मूलजी ब्रह्मचारी, सद्. शुकमनि, सद्. ब्रह्मानंदस्वामी, सद्. प्रेमानंदस्वामी, सद्. देवानंदस्वामी आदि सब बैठे थे। महाराज उनसे बात कर रहे थे। उस समय गुणातीतानन्द स्वामी व कृपानन्दस्वामी उन्मत्त गंगा (घेला) में स्नान करने गए हुए थे। वहां स्नान करते हुए स्वामिश्रीजी का एक पांव टीले के गड्डे में फंस गया। तंग गड्डे में स्वामिश्री का पांव इतनी बुरी तरह फंस गया कि अगर जोर लगाकर निकालने जायें तो पांव टूटने का डर था। स्वामिश्रीजी थोड़े उदास जैसे हो गये। तुरन्त महाराज ने दिव्य स्वरूप में दर्शन दिये व कहाः 'धीरे-धीरे पांव बाहर निकालो नहीं तो पांव टूट जायेगा।' अक्षर ओरडी में अचानक सभा में भी बात करते-करते बिना कोई प्रसंग ही महाराज यही वाक्य बोले और वहां बैठे संतों ने वह सुना !! उससे संतों को खूब आश्चर्य हुआ। फिर ब्रह्मानंदस्वामी ने महाराज को पूछा कि 'हे महाराज ! आप किसको इस प्रकार कह रहे हो? तब भी महाराज ने संतों को कहा-'मेरा पांव निकालो नहीं तो टूट जायेगा।' मूलजी ब्रह्मचारी जो महाराज की सेवा में रहते थे वह तुरन्त उठकर महाराज के पांव को देखने गए, परन्तु महाराज तो आसन पर विराजमान थे। मूलजी ब्रह्मचारी ने धीरे से महाराज को कहा कि 'महाराज ! आप तो आसन पर विराजमान हो, तो यहां पांव कहां से टूट जायेगा?' यह सुनकर महाराज हंसे फिर बोले 'हमारे रहने के धाम (अर्थात् गुणातीतानन्दस्वामी) का पांव टीले के गड्ढे में फंस गया था, वह बहुत मुश्किल से बाहर निकाला।' इस प्रकार धामरूप 'स्वामी' के साथ स्वयंकी तात्त्विक एकता का महाराज ने दर्शन कराया।

देहातीत होते हुए भी स्वामिश्री को अपनी देह का अत्यधिक अनादर था और देह को कष्ट देने की उन्हें आदत जैसी हो गई थी। 'साधु की देह हृष्ट-पुष्ट दिखाई पड़ती हो वह महाराज को जंचता नहीं था'—महाराज की इस मर्जी को स्वामी भली-भाँति जानते थे। इसलिए स्वामिश्री हमेशा अपनी आधी भूख दबा जाते। हां, साथी साधुओं को पूरा भोजन मिले इसका विशेष ध्यान जरूर रखते थे। शरीर अधिक न बढ़ जाये इसके लिये स्वामिश्री कमर पर नापने का एक धागा बांधे रखते थे। जरा भी शरीर बढ़ता दिखाई पड़ता तो वह व्रत कर लेते थे।

एक बार सद्. रामानन्दस्वामी के बड़े शिष्य रामदास जी ने विचरण में जाते हुए महाराज के पास स्वामिश्री को अपने साथ ले जाने की इच्छा व्यक्त की। महाराज ने कृपानन्दस्वामी के मंडल से स्वामिश्री को बुलाकर रामदासजी के साथ भेजा। यह सारा मंडल घूमते-घूमते एक गांव में पहुँचा। दो तीन संतों को बुखार आने की वजह से एक दो दिन वहीं सभी को रुक जाना पड़ा। बीमार संत अनाज कुछ खा नहीं पाते थे, इसलिए गांव के हरिभक्त मोंठ सेक कर संतो के लिए ले आये थे। रामदास जी ने वह मोंठ बीमार संतों को दिये। परन्तु मोंठ काफी अधिक थे। सब संतों को बांट देने पर भी मोंठ अधिक बच गये। रामदासस्वामी ने तो कह दिया कि अगर किसी संत को खाने हो तो वह खा ले। फिर स्वामिश्री उठे और कहा किः 'आपकी आज्ञा हो तो मैं यह मोंठ खा जाऊं।' रामदास स्वामी को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। उन्हें लगा कि यह साधु हर रोज अपनी भूख कितनी दबा लेता होगा? तब रामदासस्वामी को स्वामिश्री की महिमा समझ में आई कि सचमुच कोई तपस्वी पुरुष है। स्वामिश्री को तप खूब पसंद था।

इन प्रसंगों को लेकर हम विचार करें कि स्वामिश्री की महाराज के प्रति कैसी अनुपम प्रीति

और अविरत निगाह होगी? महाराज के प्रति ही नहीं, महाराज के संबंध वालों के प्रति भी वही प्रेम, ममता व महिमा भरा दिल ! ऐसे संपूर्ण पात्र को हीं महाराज अपनी धर्म मशाल सौंपकर निश्चिन्त हुए होंगे।

गुरुपूर्णिमा का पावन अवसर भी नजदीक आ रहा है। हम सब भीउ ऊपर लिखी गई उसी गुणातीत पीढ़ी के पौधे हैं। जब स्वामिश्री स्वयं अनादि अक्षर का स्वरूप होते हुए भी एक सामान्य सेवक की भांति ही पूरा जीवन जिये, तो हमारी फर्ज तो खूब बढ़ जाती है। सही अर्थ में देखें तो सेवक अपने वर्तने से ही गुरु का नाम रोशन करता है। तो गुरुपूर्णिमा पर अपने प्राणप्रिय प्रभु के प्रति वफादार होने कृतनिश्चयी बने। स्वरूपों की सेवा करना तो भक्ति है ही, परन्तु उनके संबंध वालों को प्रभु का ही स्वरूप मानकर, प्रभु के ही भाव से उनकी सेवा में खो जाना वह पराभक्ति है। गुणातीत अर्थात् सेवक.... ! प्रत्यक्ष स्वरूपों की अन्तर की इच्छा भी यही है कि हम सब जल्दी से जल्दी उनके अभिप्राय को समझ कर एक दिव्य सुरुचि भरा जीवन जीने की शुरुआत करें.....एक दूसरों के आत्मीय बने। कोई व्यक्ति, शक्ति, पदार्थ, मन, इन्द्रियां, अन्तःकरण, हमारी कोई वृत्ति हमारी गुरुभक्ति अदा करने के रास्ते बाधक न बने, हम पर हावी न हो सके। 'मैं तुम्हारी बांसुरी' इसी भावना से प्रभु के चरणों में सर्वस्व समर्पित कर पायें—यही गुरुपूर्णिमा के पवित्र अवसर पर गुणातीत स्वरूपों के चरणों में अन्तर की प्रार्थना।

★★★

ब्रह्मप्रवाह

.....पू. बापा को याद करके जैसी प्रेरणा हो वैसा लिखना (करना)। चाहे भूल होगी, तो भी अनुभव से सीखने को मिलेगा। इसलिये उनकी दिव्य शक्ति का अब उपयोग करते जाना।

.....अन्दर-अन्दर प्रगट के उपासकों को भावफेर हो, अभाव-अवगुण आये वह ही **वासना** और

सच्चे भगवदी हो व जिसके द्वारा प्रगट स्वरूप की महिमा समझी हो उसके प्रति भावफेर हो या अभाव आये—वह है जीव का मूलभूत **स्वभाव** व प्रकृति; जो बड़े पुरुष के केवल अनुग्रह के बिना टले ही नहीं।

इसलिए ऐसे संत का समागम व सेवा या प्रसंग कर लेने की तान व गरज रखनी—यही आत्यंतिक कल्याण व देह होते हुए ही अक्षरधाम का दिव्य सुख प्राप्त करने का साधन है, जो गुरुकृपा से आज सुलभ (आसान) बना है तो ऐसा अनुपम लाभ कोरोड़ों काम बिगाड़ कर भी ले लेना।

11 सितं., 1966

प.पू. काकाजी महाराज

स्वामी की बातें

101. स्मृति सहित व स्मृति रहित में क्या फर्क है? जैसे बसी व्यक्ति व ठाली और भरी बैलगाड़ी व खाली बैलगाड़ी में है। दोनों के बोलने, चलने, खाने, सुनने इत्यादि सब क्रिया में फर्क है।

प्र-2,129

102. बड़े की महिमा समझना कठिन है। क्योंकि ब्रह्मांड की भी गिनती न करें, पर लौकिक तुच्छ पदार्थों की संभाल रखता दिखाई पड़े—यह बात कैसे समझ में आयेगी।

प्र-2,130

103. सेवा तो अपनी श्रद्धा के अनुसार करना परन्तु असेवा तो कभी नहीं करना। असेवा क्या? अवगुण लेना—दूसरों के दोष देखना।

प्र-2,133

104. इस जीव को मक्खी में से सूर्य बनाना है; वह परिश्रम बिना तो होगा नहीं। वह तो गुरु व शिष्य दोनों को श्रद्धा से लगे रहना पड़ेगा। प्र.2,134

105. जीव प्राणी मात्र के मन को रहने का ठिकाना महाराज ने बताया। पुरुष का मन स्त्री के गुह्य अंग और में स्त्री का मन पुरुष के गुह्य अंग में। प्र.2,135

106. जब भगवान प्रसन्न होते हैं तब बुद्धियोग देते हैं या बड़े संत का समागम देते हैं. जब तक किसी में रज, तम इत्यादि हैं तब तक उसमें धर्मादिक गुण दिखाई भले ही देते हों पर उसकी एक स्थिति नहीं रहती ऐसा पंचम स्कंध में कहा है।

प्र. 2, 140

107. द्रव्य की प्रधानता न हो ऐसे व्यक्ति बहुत कम होते हैं। हां, केवल महाराज की ओर निगाह हो उसे द्रव्य प्रधान नहीं होगा। सो कहा गया है कि 'ऐसी कौन सी चीज है, इस धरती पर जो प्रभु में लुभे हैं उन्हें लुभाये? ऐसों को द्रव्य प्रधान नहीं हो सकता, बाकी तो सभी को द्रव्य प्रधान रहेगा ही।

प्र. 2,141

108. देह छूट गई सो क्या हुआ? जीवात्मा की कहां मृत्यु होती है? दरअसल तो साधु होना, साधुता सीखनी व स्वभाव छोड़ने—यही करना है।

मर गये तो सब कुछ पूरा हो गया, कुछ करना शेष नहीं रहा—ऐसा समझना ही नहीं। प्र.2,143

109. माला फेरनी यदि आ भी गई तो उससे क्या? ज्ञान जैसा तो कहीं माल नहीं है व ज्ञान के बिना तो सब कुछ कच्चा है।

प्र. 2, 145

110. मान-अपमान में अपने आपको 'अक्षर' मानना। हमसे कोई बड़ा है ही नहीं, सो किससे मान अपमान पाना?

प्र .2,149

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	25.7.88	सोमवार	देवशयनी एकादशी, नियम की एकादशी, व्रत
2.	दि.	29.7.88	शुक्रवार	आषाढ़ी पूर्णिमा, गुरुपूर्मिम
3.	दि.	8.8.88	सोमवार	एकादशी, व्रत
4.	दि.	13.8.88	शनिवार	श्रावण मास प्रारम्भ
5.	दि.	22.8.88	सोमवार	श्री हरिजयंती, नवमी
6.	दि.	24.8.88	बुधवार	एकादशी, व्रत

PUBLISHED By SADHU MUKUNDJIVANDAS FOR YOGI DIVINE SOCIETY,
A 103, Ashokvihar-III, Delhi-110 052. (India) Tel.: 7128838, 7229327
Printed at R.P. Printers, Shahdara, Delhi-110 032